शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
180 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

# राजस्थानी कलाकारों द्वारा अलंकृत वस्तुओं का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसायिकरण– एक विवेचनात्मक अध्ययन

**डॉ० रीता सिंह**
*PDFWM (U.G.C), ललित कला विभाग*
*मेरठ कॉलिज, मेरठ*

**सारांश**

*राजस्थानी लोक कलाएं व हस्त–कलाएं व्यापारिक दृष्टि से बाजार में अपना विशेष स्थान बना चुकी है। यद्यपि आज के बाजारीकरण के युग में सभी तरह की अलंकृत वस्तुएं, कलाकषतियाँ आदि उपलब्ध है जो उचित मूल्यों में बाजारों में बिकते है। वही दूसरी ओर कलाकारों ने नई तकनीकों के माध्यम से कला का रूप परिवर्तित कर नया रूप प्रदान किया है। जहाँ पहले कलाकार चित्रण कार्य अपनी कलाकृतियों के प्रदर्शन व आत्म–संतुष्टी के लिए करता था। वहीं आज वह व्यापार व पूंजी निवेश के बढ़ते प्रचलन की ओर आकर्षित होकर कलाकृतियों का निर्माण कर रहा है। जिससे आज कलाकार हर तरह की कृतियाँ अंतर्राष्ट्रीय कला बाजार में प्रदर्शित कर रहा है ताकि कलाकार के मूल कृतियों पर उन्हें उचित आर्थिक एवं व्यवहारिक सम्मान प्राप्त हो सके।*

## प्रस्तावना

कला मनुष्य के द्वारा किया गया सृजन है। कला का अस्तित्व तभी से है जब से मानव का अस्तित्व है। कला समय की भाँति परिवर्तन की एक निरंतर प्रक्रिया है। जो आदिकाल से चली आ रही हैं कला के क्षेत्र में कोई भी समय ऐसा नहीं रहा जब अस्थिरता न रही हो। परिणामतः मानव मन सदा नये आयामों की खोज में तत्पर रहता है।

यद्यपि किसी निर्मित कलाकृति के पीछे कलाकार की अत्यन्त सूक्ष्म व संवेदनषील भावनाएँ ही प्रमुख होती है तथापि उसमें गहरी मानसिक जटिलताएँ भी छिपी होती है। वास्तव में कलाकार ने सौन्दर्य की अनुभूति को अलौकिक मानते हुए उसे कल्याणकारी माना। परन्तु आज के परिवेष में कलाकारों की यह उक्ति कही न कहीं बोझिल होती दिखाई दे रही हैं कला मनुष्य के अन्तःकरण में उठी भावनाओं का प्रस्फुटन है उसका बाह्य जगत में साकार रूप है। जब ये भावनाएँ मानव जगत में प्रवेश करती है तो **सृष्टा** और **दृष्टा** (कलाकार व दर्शक) दोनो को ही सुख, सन्तुष्टि, व आनंद का आभास कराती है। सृष्टा अपनी इस कृति को कृतित्व प्रदान करके आत्मसन्तुष्टि का अनुभव करता है तो दृष्टा उसे अपने नेत्रों द्वारा अन्तःकरण में समाहित कर सुख के सागर में गोते लगाता प्रतीत होता है। यही कला का मुख्य उद्देश्य, ध्येय या लक्ष्य भी है कि

वह मानव मन को उस लोक में ले जाती है। जिसमें दृष्टा या दर्शक जाना चाहता है।

कला निर्माण करना जितना कठिन है उतना ही कठिन है कला को खरीदना। कला की पहचान करके खरीदना स्वयं में गुण है। कला से आय हमेशा से चुनौतीपूर्ण रही है। आज का कलाकार प्रसिद्धी और पैसा कमाने के लिए छोटा रास्ता अपनाते है। अपनी कला की महत्ता को कम करते हुए कलाकार जल्दी से जल्दी पैसा कमाने की कौशिश करते है।

राजस्थान प्रदेश सदियों से अपनी संस्कृति की एक अनुपम धरोहर धारण किये हुए है। राजस्थान की कला एवं संस्कृति में चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, वेशभूषा, खान–पान एवं सम्पूर्ण एक अतिविशिष्ट जीवन शैली के कारण इसे रंगीला राजस्थान के नाम से अभिहीत किया जाता है। राजस्थानी कलाकारों ने अपनी संस्कृति की अनमोल धरोहर को सहेज कर रखा है और उनकी इस धरोहर ने कलाकृतियों के रूप में विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाई जिसके परिणामस्वरूप राजस्थानी कलाकारों द्वारा **अंलकृत** वस्तुओं का **अंतर्राष्ट्रीय स्तर** पर व्यवसाय अति उच्च स्तर पर है। यहाँ के कलाकारों द्वारा बनाई हस्तनिर्मित वस्तुओं में प्राथमिक रंगों की प्राथमिकता हैं, जो अति आकर्षक है। यहाँ के रंग, वेशभूषा, कला व संगीत राजस्थान की पहचान है। "ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान एक महत्वपूर्ण राज्य है। राजस्थान पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है।[1]

वर्तमान में कलात्मक विकास अर्थ से जुड़ गया है। कलादीर्धाओं के निर्देशन में कलाकृतियाँ निर्मित करवाई जाती है। जनता को क्या पंसद है उन्ही के अनुरूप कलाकृतियाँ निर्माण करवायी जाती है। आज मांग रचनात्मकता पर भारी पड़ती दिखती है। यहाँ तक कुछ कलाकारों की कृतियों की नकल भी धड़ल्ले से हो रही है।[2] चित्रकार किसी भी **कलाकृति** के निर्माण से पूर्व समाज से उनके अनुभवों को प्राप्त करता है और उन अनुभवों को अपनी **आत्माभिव्यक्ति** के द्वारा मूर्त रूप प्रदान करता है। चित्र बनाने तक उसने समाज के दो नियमों का पालन किया। अब तीसरा नियम समाज को अपने अनुभव का दान करना बाकी रह गया। वह चित्रकार तभी तक सकता है। जब अपने चित्रों को समाज के सम्मुख रखे। इसलिए चित्रकार अपने चित्रों का प्रदर्शन करता है।[3]

राजस्थान की लोक संस्कृति विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कभी राजपूत राज्यों के संयोजन से बना राजपूताना वर्तमान में राजस्थान कहलाया। अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा एवं संवर्धन करने में राजपूतों का इतिहास में एक विशिष्ट स्थान माना जाता है। अपनी भारतीय संस्कृति में उत्सव, कलाप्रियता, शौर्य, श्रृंगार, धर्म एवं अध्यात्म व्यक्ति को बहुत गहराई तक प्रभावित करते रहे हैं। इन तत्वों से सर्वाधिक राजपूत प्रभावित रहे है। राजस्थान के ये सांस्कृतिक तत्व आज भी गाँव के लोक जीवन में अपने पुराने स्वरूप में उपस्थित है। यहाँ के लोक जीवन में ये सभी तत्व आसानी से देखे जा सकते है। यहाँ के जीवन में कला–प्रियता, ग्रामीण महिलाओं के वस्त्र विन्यास, उनका आचरण अपने पुराने स्वरूप में ही उपस्थित है, उनकी रंग–प्रियता के विविध रूप, उनके लोक जीवन में दिखाई पड़ते है। आज की राजस्थान की श्रमिक महिलाएँ अपना कार्य समाप्त कर रंग–बिरंगे परिधान पहने, लोकगीत गाती हुई घर लौटती

है तो ऐसा लगता है कि **लोककला, लोक संगीत** और **लोक काव्य** तीनों एक रूप हो अनुपम संयोजन का सृजन कर रहे हों।

कला ने वैश्वीकरण युग में व्यवसायिक रूप ले लिया है। राजस्थानी कला व लोककला के विदेषी खरीददारों में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। वर्तमान राजस्थानी कला ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एवं समय की मांग के अनुरूप अपनी कला को व्यापारिक रूप प्रदान करता रहा है। आज कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों को बाजार में बड़ी मात्रा में बेचने के लिए उन्हें व्यवसायिक रूप प्रदान किया है। उनका उद्देश्य अपनी कला की अभिव्यक्ति को दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर इसके माध्यम से पूँजी कमाना हैं। पहले प्रत्येक उत्सवों में घर की सजावट हेतु महिलाएँ प्रतीकों व चिन्हों को घर में स्वयं बनाती थी परन्तु आज के बदलते समाज में उन्हें भी बाजार में निर्मित कलाकृतियों की ओर आकर्षित किया है। उत्सवों में घरों को सजाने हेतु महिलाएँ प्रतीकों एवं चिन्हों को बाजार से एक विशेष मूल्य देकर अर्जित करती हैं। इसक कारण प्रत्येक की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बाजार में कलाकारों द्वारा बनायी गई कलाकृतियाँ, मिट्टी, पत्थर व संगमरमर की बनी मूर्तियाँ, नक्काशी किए बर्त्तन व प्रतीक चिन्हों तथा सजावट का प्रत्येक सामान बाजार में उपलब्ध रहता है।

दूसरे विश्व युद्ध के समय खासकर सन् 1940 के आस–पास **साँगानेर** में छपाई की स्थिति बहुत खराब थी, उस समय कपड़े पर नियंत्रण होने के कारण कपड़े की कीमत तीन आना गज होती थी, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय सन् 1944 में इस उद्योग में कुछ उभार आया और यह उद्योग चलने लगा तथा कपड़े की कीमत में भी कुछ बदलाव आया। सन् 1953 में निर्यात का काम शुरू हुआ इसके लिए दिल्ली में **विश्व प्रदर्शनी** का अयोजन किया गया जिसमें विदेशी व्यवसायी भी आये थे उन्होंने साँगानेर के छपे कपड़ों को देखकर खरीदने की मांग की तथा राजस्थान हैण्डलूम एम्पोरियम के द्वारा यहाँ के छीपों को निर्देश दिया। उस वक्त एम्पोरियम के द्वारा पंलगपोश, छींट के थान आदि का निर्यात होने लगा तथा जयपुर के बनियों ने भी इस काम में सहयोग दिया तथा साँगानेर के छपे कपड़ों का निर्यात शुरू किया। जिसमें मुख्य से थारियामल बालचन्द और मुकुन्द बिहारी गोयल के नाम प्रमुख है[4] साँगानेरी छपाई को विश्व बाजार तक पहुँचाने का श्रेय सन् 1955–56 में प्रबन्ध निदेशक और किसी जमाने में साँगानेर के विकास अधिकारी रहे श्री मुन्नालाल गोयल को भी जाता है; जिन्होंने इस कला को विदेशों में लोकप्रिय बनाया।[5] सन् 1970 में बहुत सा माल विदेशों में जाने लगा जिसमें मुख्य रूप से बनियान, मीडी, स्कर्ट, ब्लाउज व वेशभूषा बनाने के कपड़ों का निर्यात होता था। इसी बीच स्क्रीन छपाई के बढ़ते प्रभाव का भी छपाई के पारम्परिक व्यवसाय पर विपरित असर पड़ा[6] किन्तु

वर्तमान में इस स्थिति में सुधार हुआ है। आज साँगानेर में चारों ओर छपाई के कारखनों ने आधिपत्य जमा लिया है, जिनमें तैयार वस्त्र कनाडा, अमेरिका, यूरोप, जर्मनी, मेक्सिको, जापान, न्यूयार्क एवं इंग्लैण्ड में निर्यात किये जाते हैं।

**बाडमेर** की छपाई परम्परागत शैली में प्राकृतिक रंगों के माध्यम से की जाती है। यहाँ की छपाई का प्रमुख आकर्षण अजरख है। यहाँ छापे गये वस्त्रों का भारत में ही नहीं, अपितु सारे विश्व में विशेषकर यूरोपीय देशों में अपना विशिष्ट स्थान है।[7] साथ ही बीकानेर की रंगाई–छपाई ने भी राजस्थान में ही नहीं, बल्कि विदेशों में ख्याति प्राप्त की हैं देश–विदेश के सभी हैण्डीक्राफ्ट एम्पोरियमों को यहाँ छपे कपड़ों का बेताबी से इंतजार रहता है। बीकानेर में कलात्मक छपाई के अंतर्गत पंलगपोश, मेजपोश, चादर, रजाई के अस्तर परदे एवं छीटों की छपाई होती है, जो कि विदेषों में बहुत पसंद किये जाते हैं।[8]

राजस्थान प्रदेश में किशनगढ़ राज्य जहाँ एक और अपनी कलाकृतियों व बणीठणी (भारतीय मोनालिसा) के लिए प्रसिद्ध है वही दूसरी ओर यह संगमरमर की नगरी के नाम से भी प्रसिद्ध है। राजस्थान के इस क्षेत्र में संगमरमर का व्यापार उन्नत दशा में है। यहाँ पर रंगीन पत्थर, कीमती नग आदि का कार्य बहुतायत से होता है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में यहाँ के मारबल से बनी अलंकृत वस्तुओं, कीमती नगो, अलंकृत वेशभूषाओं आदि की मांग बहुतायत से है। यहाँ के अलंकृत महल व इमारतें भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ विदेशों से पर्यटक घूमने के लिए आते हैं, जिसके कारण यहाँ की अंलकृत वस्तुओं की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

राजस्थान को **हस्तशिल्प** का संग्रहालय कहा जा सकता है। आज राजस्थान के हस्तशिल्प ने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त कर लिया है। राजस्थान की बुनाई, छपाई, रंगाई, जवाहरात की कटाई, मीनाकारी, आभूषण निर्माण, बंधेज, गलीचा, संगमरमर की अंलकृत वस्तुएँ, हाथीदाँत, चंदन, लाख व काश्ठ के कलात्मक कार्य, चीनी मिट्टी का काम, धातु की कारीगरी, चमड़े की जूतियाँ व थैले, पुस्तकों पर कलात्मक लखन, चूड़ियाँ निर्माण कार्य, टेराकोटा (मिट्टी से बनी वस्तुएँ जैसे मूर्तियाँ, बर्तनादि), ब्लू पाटरी इत्यादि प्रसिद्ध है।

ऊँट की खाल पर स्वर्ण मीनाकारी और मुनव्वत का कार्य **"ऊस्तां कला"** के नाम से जाना जाता है। इस कला का विकास पद्म्श्री से सम्मानित बीकानेर के हिस्सामुद्दीन उस्तां ने किया था। ऊस्तां द्वारा बनाई गई कलाकृतियाँ देश–विदेश में प्रसिद्ध हैं। ऊँट की खाल से बनी कुप्पियों पर स्वर्ण दुर्लभ मीनाकारी का कलात्मक कार्य आकर्षक और मनमोह लेने वाला होता है। शीशियों, कुप्पियों, आइनों, डिब्बो, मिट्टी की सुराहियों पर यह कला उकेरी जाती है। बीकानेर का "कैमल हाइड ट्रेनिंग सेंटर" ऊस्तां कला का प्रशिक्षण संस्थान है।

ज्वैलरी पर **मीनाकारी** के लिए जयपुर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान रखता है। सोने के आभूषणों के अतिरिक्त चांदी के खिलौनो व आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती हैं जयपुर में **ब्लू पाँटरी** निर्माण की शुरूआत का श्रेय महाराजा रामसिंह (1835–80 ई०) को है। उन्होंने चूडामन और कालू कुम्हार को पाँटरी का काम सीखने दिल्ली भेजा और प्रषिक्षित होने पर उन्होंने जयपुर में इस हुनर की शुरूआत की। बाद में कृपाल सिंह शेखावत ने इस कला को देश–विदेश में पहचान दिलाई।

नाथ द्वारा भी मीनाकारी का प्रसिद्ध केन्द्र है। कोटा के रेतवाली क्षेत्र में कांच पर विभिन्न रंगों से मीनाकारी का काम किया जाता है। सवाई माधोपुर, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) व इन्द्रगढ़ (बूंदी) लकड़ी के खिलौने व अन्य वस्तुओं पर लाख के काम के लिए प्रसिद्ध है। लाख से चूड़ियाँ चूडे, पशु–पक्षी, पेन्सिल, पैन, कांच जड़े लाख के खिलौने, बिछिया आदि तैयार किये जाते हैं। **बगरू** (जयपुर) की छपाई आजकल काफी लोकप्रिय है। यह प्रिंट सांगानेरी प्रिंट की ही तरह है। बाड़मेर **अजरक** प्रिंट के लिए प्रसिद्ध है। अजरक प्रिंट में अधिकांश लाल और नीले रंगों से छपाई कार्य होता है।

राजस्थानी लोक कलाएं व हस्त–कलाएं व्यापारिक दृष्टि से बाजार में अपना विषेश स्थान बना चुकी है। यद्यपि आज के बाजारीकरण के युग में सभी तरह की अलंकृत वस्तुएं, कलाकषतियाँ आदि उपलब्ध है जो उचित मूल्यों में बाजारों में बिकते है। वही दूसरी ओर कलाकारों ने नई तकनीकों के माध्यम से कला का रूप परिवर्तित कर नया रूप प्रदान किया है। जहाँ पहले कलाकार चित्रण कार्य अपनी कलाकृतियों के प्रदर्शन व आत्म–संतुष्टी के लिए करता था। वहीं आज वह व्यापार व पूंजी निवेश के बढ़ते प्रचलन की ओर आकर्षित होकर कलाकृतियों का निर्माण कर रहा है। जिससे आज कलाकार हर तरह की कषतियाँ अंतर्राश्ट्रीय कला बाजार में प्रदर्शित कर रहा है ताकि कलाकार के मूल कृतियों पर उन्हें उचित आर्थिक एवं व्यवहारिक सम्मान प्राप्त हो सके।

## संदर्भ ग्रंथ

1. "डॉ0 भंवर लाल गर्ग एवं डॉ0 आनन्द प्रकाश भारद्वाज" *"राजस्थान भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन"*, प्रथम संस्करण–2000
2. "राम विंरजन"– *समकालीन भारतीय कला,* प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ सं0–**36**
3. "रामचन्द्र शुक्ल"– *कला और आधुनिक प्रकृतियाँ,* प्रथम संस्करण 1958, पृष्ठ सं0–**51**
4. साँगानेरी–छपाई, भाग प्रथम *नेशनल क्राफ्ट इंस्टीट्यूट फॉर हैण्ड प्रिंटेड टैक्सटाइल्स,* हस्त–शिल्प आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार, जयपुर, 1985, पृष्ठ सं0 **11**
5. "हरि महर्षि"– *राजस्थान के हस्तशिल्प,* जयपुर 1994 पृष्ठ सं0–**98**
6. "कमलेष माथुर"– *हस्तशिल्प कला के विविध आयाम,* जयपुर 1997, पृष्ठ सं0 **46**
7. *राजस्थान में वस्त्र छपाई वस्त्रोंद्योगः एक अध्ययन,* भाग–4, राष्ट्रीय वस्त्र छपाई हस्त–कला संस्थान, जयपुर, 1986, पृष्ठ सं0 **18**
8. "चन्द्रमणि सिंह"– *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा,* जयपुर, 2004, पृष्ठ सं0 **309**